सीरते मुहम्मदी के कुछ पहलू

प्रोफेसर अल्लामा सै0 अली मुहम्मद नक़वी साहब क़िब्ला

सन् 570 ई0 में अरब की अन्धेरी दुनिया में वह सितारा सामने आया जिसकी तरफ न चाहते हुए भी हर एक की नज़रें उठ गयीं और जिसका नूर दिनोदिन बढ़ता चला गया। यहाँ तक कि आज उसी इल्म व अमल के सूरज से सारी दुनिया फाएदा उठा रही है।

यह ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद मुस्तफा (स0) की पाक ज़ात थी।

जब हज़रत मुहम्मद (स0) पैदा हुए तो अरब में शायद ही कोई ऐसी बुरी बात बची होगी जो न होती हो। क़बीलों में बात–बात पर जंग होती थी। अमीरी व ग़रीबी में वह ज़बरदस्त खाड़ी थी जिसका भरना तक़रीबन नामुमकिन था। ज़ुल्म व सितम आम था। हमदर्दी का लफ़्ज़ अरबों की डिक्शनरी में ही नहीं था। और झूठ उनकी ज़बानों पर चढ़ा हुआ था।

उस वक़्त रसूल (स0) पैदा हुए और जब छोटे थे उसी वक़्त ''सादिक़'' के लक़ब से मक्के वालों में मशहूर हो गये। हर एक आपकी दी हुई ख़बर को सच्चा मानने के लिऐ अपने ज़मीर के फैसले से मजबूर था। चुनानचे जब हज़रत (स0) इस्लाम का पैग़ाम सुनाने के लिए पहाड़ की ऊँचाई पर तशरीफ ले गये और अरबों से सवाल किया कि अगर मैं कहूँ कि एक लश्कर इस पहाड़ के पीछे से तुम पर हमला करने के लिये आ रहा है तो क्या तुम यक़ीन करोगे? तो साभी लोगों ने मुहम्मद मुस्तफा (स0) की सच्चाई की गवाही देते हुए कहा कि हमने इस मुँह से कोई झूठ बात नहीं सुनी। इसलिए हम यक़ीन करने के लिये मजबूर हैं। मिसाल मश्हूर है कि झूठा हर एक को झूठा ही समझता है मगर जब झूठे भी किसी को सच्चा कहें तो इससे उसकी ग़ैर मामूली सच्चाई का अन्दाज़ा किया जा सकता है।

सच्चाई ख़ुदा के रसूल (स0) की सीरत का वह अहम पहलू है जिसको दोस्त व दुश्मन सब मानते हैं। ख़ुदा की मख़लूक़ के साथ हमदर्दी भी सीरते मुहम्मदी का अहम हिस्सा है। अवाम को गुमराही से बचाने ही के लिए उन्होंने इस्लाम को फैलाने में इतनी तकलीफें उठायीं और लाइलाहा इल लल्लाह कहने की दावत थी, जिसकी वजह से तेरह साल तक बराबर मुबारक जिस्म पर पत्थर खाए और इसी लिए अज़ीज़ वतन को छोड़ना पड़ा। और फिर उसी के लिए अपने चचा हमज़ा और भाई जाफर को ख़ुदा के रास्ते में कुर्बान करना पड़ा। यही हमदर्दी और अख़लाक़ की ख़ूबियाँ थीं जिनसे हज़ारों भटके हुए इन्सान रास्ते पर आ गये। वह वाक़ेआ किस मुसलमान को याद न होगा कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफा (स0) मक्का के बाज़ार से तशरीफ ले जा रहे थे तो एक बुढ़िया अपने घर का कूड़ा–करकट इकटठा करके आपके मुबारक सर पर फेंक दिया करती थी। कोई दूसरा होता तो न जाने क्या कर गुज़रता मगर हज़रत ने कुछ न किया और रोज़

उसी रास्ते से तशरीफ ले जाते रहे। यहाँ तक कि कुछ दिन ऐसे गुज़रे जब वह कूड़ा सर पर नहीं आया। पैग़म्बरे इस्लाम (स0) को फिक्र पैदा हुई, महल्ले वालों से पूछने पर पता चला कि वह औरत बहुत सख़्त बीमार है। रसूल (स0) उसकी ख़बर लेने के लिये गये। उसने हज़रत को देखा तो वह अपनी नीच सोंच की वजह से समझी कि शायद रसूल (स0) बदला लेने आये हैं और उसने हज़रत से कहा कि ऐ मुहम्मद! तुम ऐसे वक़्त आए हो जब मैं बीमार हूँ। रसूल (स0) ने उसको इतमिनान दिलाया कि नहीं मैं तो तुम्हारा हाल पूछने के लिए आया हूँ। इस अख़लाक़ को देखकर वह इतनी मुतास्सिर (Impress) हुई कि उसने कहा कि आप अपना पैग़ाम मुझे बताइये मैं उस पर ईमान लाऊँगी और फिर वह मुसलमान हो गई...

यह तो था एक क़िस्सा, वरना इतिहास के पन्नों पर ऐसे न जाने कितने क़िस्से बिखरे पड़े हैं जिनसे रसूल (स0) का इन्सानों के साथ मुहब्बत व हमदर्दी का शौक़ और अख़लाक़ मालूम होता है। बराबरी, इस्लाम के बुनियादी उसूल में से एक है। इस्लाम में काले गोरे, मालदार व ग़रीब, अरबी व ग़ैरे अरबी में किसी तरह का कोई फर्क़ नहीं है बस फर्क़ है तो आमाल के हिसाब से है। इस्लामी बराबरी काग़ज़ की चीज़ बनकर नहीं रह गई बल्कि इस्लाम के सही रहनुमाओं ने इस पर अमल करके भी दिखा दिया। रसूले इस्लाम (स0) की सीरत और उनकी ज़िन्दगी में बराबरी को अहम दर्जा था। एक वाक़ेआ बहुत मश्हूर है कि एक बार रसूले इस्लाम (स0) के दरबार में एक मालदार साहब बैठे हुए थे कि इतने में रसूल (स0) के एक ग़रीब सहाबी फटे पुराने कपड़ों में आए और उन मालदार साहब के क़रीब बैठ गये। दौलतमन्द को यह बहुत बुरा लगा और शायद अपना घर होता तो निकाल देते मगर चूँकि यह हज़रत मुहम्मद (स0) का दरबार था इसलिए सब्र से काम लेते हुए बस अपने कपड़े समेट लिये। हज़रत के माथे पर बल आ गये और नाराज़ होकर कहा कि अगर तुम उसके पास बैठे रहते तो क्या तुम्हारी दौलत उसमें चली जाती या उसकी ग़रीबी तुम में आ जाती... इस क़िस्से से रसूल (स0) का सभी इन्सानों के साथ बराबरी का सुलूक सामने आता है।

गुलामों और कनीज़ों के साथ हज़रत के सुलूक का अन्दाज़ा इस वाक़ेए से हो जाता है कि जब रसूल (स0) ने अपनी इकलौती बेटी फातिमा ज़हरा (स0) को एक कनीज़ दी तो कह दिया कि देखो बेटी एक दिन तुम काम करना और यह आराम करेगी, एक दिन यह काम करेगी तुम आराम करना। मतलब यह था कि इसको तुमसे ज़्यादा तकलीफ न उठाना पड़े।

अब सिर्फ मुझे मुहम्मद (स0) की सीरत के एक पहलू की तरफ और ध्यान दिलाना है और वह अम्न पसन्दी है।

आमतौर पर दुनिया इस्लाम को जंगी मज़हब और हज़रत मुहम्मद (स0) को शिद्दत पसन्द की हैसियत से देखती और समझती है। लेकिन हक़ीक़त इससे हटकर है।

रसूले इस्लाम (स0) की ज़िन्दगी अम्न पसन्दी के साँचे में ढली हुई है कभी रसूल (स0) ने अपने अस्हाब को सख़्ती की दावत नहीं दी, बल्कि हमेशा ''ला तुफसिदू फिल अर्ज़ि'' ही का हुक्म देते रहे। यक़ीनन रसूल (स0)ने जंगें भी कीं और ओहद व ख़ैबर व ख़न्दक़ की शानदार जंगें

रसूल की ही सरदारी में लड़ीं गयीं। लेकिन यह सब जंगें रसूल (स0) की अपनी ज़रूरत के लिये नहीं थीं बल्कि उन पर थोपी गयीं थीं। और उनको मजबूर कर दिया गया था कि वह जंग करें। इसलिए कि यह सब जंगें बचाव करने वाली थीं और उनकी ज़िम्मेदारी मुशरिकों पर आती थी क्योंकि अगर वह चढ़ाई करके मदीने न आते तो रसूल उनके मरकज़ों पर हमला न करते मगर जब उन्होंने हमला कर दिया था, अब अगर रसूल (स0) मुक़ाबला न करते तो ज़ुल्म का दल बढ़ता ज़ालिमों की हिम्मत बढ़ती, और मदीने के ग़रीब मुसलमानों को तरह–तरह की तकलीफें बर्दाश्त करना पड़तीं। इसलिए रसूल (स0) लड़ने पर मजबूर हो गये और हुदैबिया में चूँकि रसूल आज़ाद थे और जंग न करने से भी कोई नुक़सान नहीं था इसलिए ख़ुदा के पैग़म्बर (स0) ने इतनी बड़ी जमाअत के साथ होने और आम मुसलमानों के इस ख़याल के बाद भी कि इस वक़्त जंग करना बुज़दिली है। बिना जंग किये देखने में दबकर सुल्ह करके मदीने वापस तशरीफ ले गये। हालाँकि कुछ ज़माने के बाद जब मुश्रिकों ने उन शर्तों की पाबन्दी नहीं की जो सुल्हनामे में लिखी थीं तो रसूल (स0) को फत्हे मक्का के लिये तशरीफ लाना पड़ा। मगर फत्हे मक्का के बाद जो तरीक़ा हज़रत मुहम्मद मुस्तफा (स0) ने इख़्तियार किया वह भी उनकी अम्न पसन्दी की तसदीक़ करता है। हज़रत ने अपने सख़्त से सख़्त दुश्मनों को अपने सामने बुलवाया और उनसे पूछा कि बताओ तुमको मुझसे क्या उम्मीद है?

ज़ाहिर है कि वह लोग जिन्होंने ने तेरह साल तक बराबर रसूल (स0) पर पत्थरों की बारिश की थी, जिन्होंने उनके सर पर कूड़ा–करकट फेंका था और उनको हर तरह से ज़लील करना चाहा था, अपने बारे में क्या उम्मीद रख सकते थे? मगर इन सबसे ऊपर रसूल (स0) के किरदार की वह बड़ाई थी जिसे वह शुरुआती उम्र से देख रहे थे। इसलिए उन्होंने हिम्मत करके कहा कि हम तो आपसे अच्छाई की ही उम्मीद रखते हैं।

इस पर रहमतुल लिलआलमीन की आँखों में आँसू आ गये और आपने यह हुक्म सुनाया कि जाओं तुम सबको आज़ाद किया जाता है... यह इस्लाम की वह अम्न पसन्दी थी जिसकी बेहतरीन मिसाल हज़रत मुहम्मद मुस्तफा (स0) ने पेश की!

यह तो थे रसूल (स0) की सीरत के कुछ रौशन पहलू लेकिन मुसलमानों ने रसूल (स0) की सीरत से क्या सबक़ हासिल किया यह बताते हुए क़लम शर्म महसूस करता है।

वह रसूल (स0) जो ज़िन्दगी भर सच बोलता रहा, जिसने इन्सानों के साथ हमदर्दी को अपनी ज़िन्दगी की निशानी बना लिया था। उसके मानने वाले आज झूठ पर झूठ बोलने में झिझक महसूस नहीं करते। बेगुनाहों पर ज़ुल्म व सितम करने में अपनी बड़ाई समझते हैं। और ग़रीबों को इन्सान न समझने में फख़्र महसूस करते हैं... यही वजह है कि मुसलमान बराबर अन्धेरों के गढ़ों में गिरते चले जा रहे हैं। अगर वह रसूल (स0) की सीरत के कम से कम इन्हीं पहलुओं पर अमल करें जिन पर इस छोटे से मज़मून में ध्यान दिलाया गया है तो शायद वह एक बार फिर दुनिया के लिये नमूना (Ideal) साबित हो सकें।

